

सुनहले शैवाल

अज्ञेय की कुछ कविताएं
कवि के छायाकनों से मण्डित



अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय

• प्रथम संस्करण
१६६६

• प्रकाशक
अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०
दिल्ली

• मूल्य
पन्द्रह रुपये

• आवरण
नरेन्द्र श्रीवास्तव

• पुस्तक-बंध
विजय बुक बाइंडिंग हाउस
दिल्ली

• मुद्रक
शुचि प्रा० लि०
नई दिल्ली

अनुक्रम



ओ एक ही कली की

•

ओ एक ही कली की
मेरे साथ प्रारब्ध-सी लिपटी हुई
दूसरो, चम्पई पँखुडी !
हमारे खिलते-न-खिलते सुगन्ध तो
हमारे बीच मे से होती
उड जायगी !

ooo



सन्ध्या सकल्प

●

यह सूरज का जपा-फूल
नैवेद्य चढ चला
सागर-हाथो
अम्बा तिमिरमयी को
रुको साँस-भर
फिर मैं यह पूजा-क्षण
तुमको दे दूँगा !

क्षण अमोघ है, इतना मैंने
पहले भी पहचाना है
इस लिए साँझ को नश्वरता से नही बाँधता ।
किन्तु दान भी है अमोघ, अनिवार्य,
धम
यह लोकालय मे
धीरे-धीरे जान रहा हूँ
(अनुभव के सोपान !)
और
दान वह मेरा एक तुम्ही को है !
यह एकोन्मुख तिरोभाव—
इतना भर मेरा एकान्त निजी है—
मेरा अर्जित
वही दे रहा हूँ
ओ मेरे राग सत्य !
मैं
तुम्हे !

ऐसे तो हैं अनेक
जिनके द्वारा
मैं जिया गया,
ऐसा है बहुत
जिसे मैं दिया गया।
यह इतना
मैंने दिया।
अल्प यह लय-क्षण
मैंने जिया।

आह, यह विस्मय!
उसे तुम्हे दे सकता हूँ मैं!
उसे दिया।
इस पूजा क्षण मे
सहज, स्वत प्रेरित
मैंने सकल्प किया।
ooo

हमने शिखरो पर जो प्यार किया

•

हमने शिखरो पर जो प्यार किया
घाटियो मे उसे याद करते रहे,
फिर तलहटियो मे पछताया किये
कि क्यो जीवन यो बरबाद करते रहे।

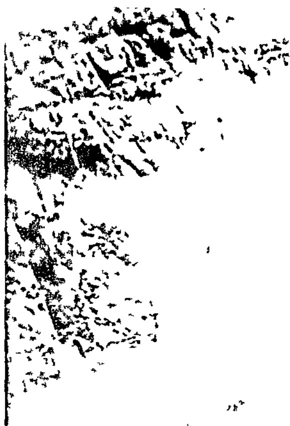
पर जिस दिन सहसा आ निकले
सागर के किनारे—
ज्वार की पहली ही उत्ताल तरग के सहारे
पलक की झपक-भर मे पहचाना
कि यह अपने को कर्त्ता जो माना—
यही तो प्रमाद करते रहे।

शिखर तो सभी अभी हैं,
घाटियो मे भी हरियालियाँ छायी हैं,
तलहटिया तो और भी
नयी बस्तियो मे उभर आयी हैं।

सभी कुछ तो बना है, रहेगा
एक प्यार ही को क्या
नश्वर हम कहेगे—
इसलिए कि हम नही रहेगे ?

ooo







निरस्त्र

•

कुहरा था,
सागर पर सन्नाटा था
पछी चुप थे।
महाराशि से कटा हुआ
थोडा-सा जल
बन्दी हो
चट्टानो के बीच एक गढिया मे
निश्चल था
पारदर्श।

प्रस्तर-चुम्बी
बहुरगी
उद्भिज-समूह के बीच
मुझे सहसा दीखा
केंकडा एक
आँखें ठण्डी
निष्प्रभ
निष्कौतूहल
निर्निमेष।

जाने
मुझ मे कौतुक जागा
या उस प्रसृत सन्नाटे मे
अपना रहस्य यो खोल
आख भर तक लेने का साहस



उस उदासीन ने
सुना नही
आंखो मे
वही बुझा सूनापन जमा रहा ।
ठडे नीले लोहू मे
दौडी नही
सनसनी कोई ।

पर अलक्ष्य गति से वह
कोई लीक पकड
धीरे-धीरे
पत्थर की ओट
किसी कोटर मे
सरक गया ।

मैंने पूछा क्यो जी,
यदि मैं तुम्हे बता दूं
मैं करता हूँ प्यार किसी को—
तो चौकोगे ?
ये ठडी आंखे झपकेंगी
औचक ?

यो मैं
अपने रहस्य के साथ
रह गया
सन्नाटे से घिरा
अकेला
अप्रस्तुत
अपनी ही जिज्ञासा के सम्मुख निरस्त्र,
निष्कवच,
वध्य ।

ooo

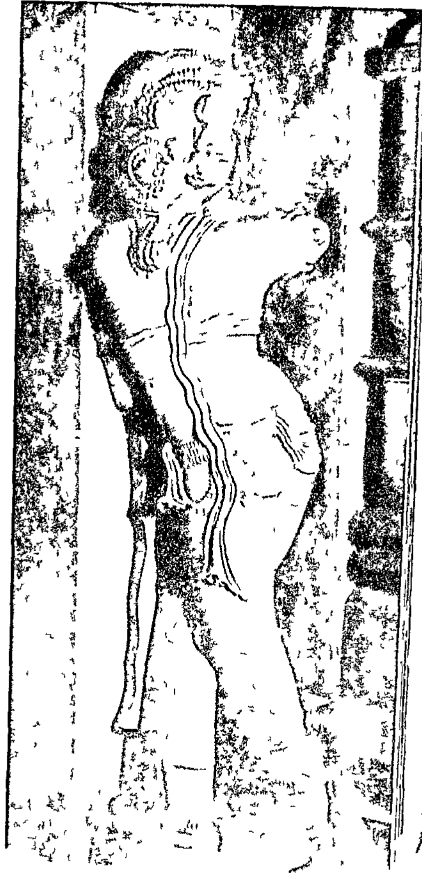
देह-वल्ली

•

देह-
वल्ली ।
रूप को
एक बार बेझिझक देख लो ।
पिंजरा है ? पर मन इसी मे से उपजा ।
जिस की उन्नीत शक्ति आत्मा है ।

देखो देह-
वल्ली ।

भव्य बीज रूपाकारो का
'निगन्धा इव किंशुका '—
गन्ध के उपभोक्ता किन्तु कहे तो
कब हम वसन्त के उन्मेष को
नही उस एक सकेत से पहचान सके ?
कब वह नही हुआ
जीवन के चिरन्तन
स्वयम्भाव का प्रतीक ?
देखो
व्रीडाहीन इस कान्ति को
आखो मे समेट लो ।
देखो
रूप
नाम-हीन
एक ज्योति
अस्मिता इयत्ता की
ज्वाला
अपराजिता अनावृता । ०००



१५ ● सुनहले शैवाल

झील का किनारा

•

झील का निर्जन किनारा
और वह सहसा छाये सन्नाटे का
एक क्षण हमारा।

वैसा सूर्यास्त फिर नही दिखा
वैसी क्षितिज पर सहमी-सी बिजली
वैसी कोई उत्ताल लहर और नही आयी
न वैसी मदिर बयार कभी चली।

वैसी कोई शक्ति अकल्पित और अयाचित
फिर हम पर नही छायी।
वैसा कुछ और छली काल ने
हमारे सटे हुए लिलारो पर नही लिखा।

वैसा अभिसचित, अभिमन्त्रित,
सघनतम सगोपन कल्पान्त
दूसरा हमने नही जिया।
वैसी शीतल अनल-शिखा
न फिर जली, न चिर-काल पली,
न हमसे सँभली।

या कि अपने को उतना वैसा
हमी ने दुबारा फिर नही दिया ? ०००



आँगन के पार द्वार

•

आँगन के पार
द्वार खुले
द्वार के पार आँगन !
भवन के ओर-छोर
सभी मिले—
उन्ही मे कही खो गया भवन।

कौन द्वारी
कौन आगारी, न जाने,
पर द्वार के प्रतिहारी को
भीतर के देवता ने
किया बार बार पा-लागन।

ooo

प्रथम किरण

•

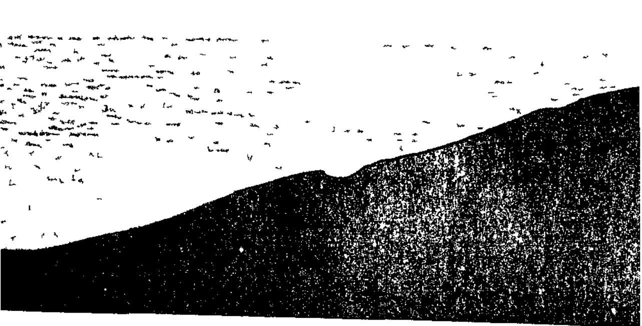
भोर की
प्रथम किरण
फीकी

अनजाने
जागी हो
याद
किसी की—

अपनी
मीठी
नीकी।

धीरे-धीरे
उदित
रवि का
लाल-लाल
गोला

चौंक कहीं पर
छिपा
मुदित
वन-पाखी
बोला



दिन है
जय है
यह बहु-जन की
प्रणति,
लाल रवि,
ओ जन-जीवन
लो यह
मेरी
सकल साधना

तन की
मन की—

वह वन-पाखी
जाने गरिमा
महिमा
मेरे छोटे
चेतन

छन की ! ०००

निर्झर

•

आओ, इस अजस्र निर्झर के तट पर
प्रिय, क्षण-भर हम नीरव
रह कर इसके स्वर मे लय कर डाले
अपने प्राणो का यह अविरल रौरव !

प्रिय ! उसकी अजस्र गति क्या कहती है ?
'शक्ति ओ अनन्त ! ओ अगाध !'
प्राणो की स्पन्दन गति उस के साथ साथ रहती है—
'मेरा प्रोज्ज्वल क्रन्दन हो अबाध !'

प्रिय, आओ इस की सित फेनिल स्मित के नीचे
तप्त किन्तु कम्पन-श्लथ हाथ मिला कर
शोणित के प्रवाह मे जीवन का शैथिल्य भुला कर
किसी अनिर्वच, सुख से आँखें मीचे
हम खो जावे, वैयक्तिक पार्थक्य मिटा कर !



ग्रथित अँगुलियाँ, कर भी मिले परस्पर—
प्रिय, हम बैठ रहे इस तट पर !
और अजस्र सदा यह निर्झर
गाता जावे, गाता जावे, चिर-एकस्वर !

पर, एकस्वर क्यो ? देखो तो, उडते फेनिल
रजतकणो मे बहुरगो का नत्तन !
क्यो न हमारा प्रणय रहेगा स्वप्निल
छायाओ का शुभ चिरन्तन दपण !

इन सब सन्देहो को आज भुला दो !
क्षण की अजर अमरता मे बिखरा दो !
उर मे लिये एक ललकार, सुला दो,
चिर जीवन की ओछी नश्वरताएँ !
सब जाएँ, बह जाएँ, सब बह जाएँ !

वह अजस्र बहता है निर्झर निर्झर !
आओ, अजलि-बद्ध खडे हम शीश नवा लें !
उठे कि सोये प्राणो मे पीडा का मर्मर—
हम अपना-अपना सब कुछ दे डालें—
मैं तुमको, तुम मुझे, परस्पर पा लें !
मूक हो, वह लय गा लें—
जो अजस्र बहुरगमयी, जैसे यह निर्झर—
यह अजस्र जो बहता निर्झर !

ooo



नाता-रिश्ता

•

तुम सतत
चिरन्तन छिने जाते हुए
क्षण का सुख हो—
(इसी मे उस सुख की अलौकिकता है)
भाषा की पकड मे से फिसली जाती हुई भावना का अर्थ
(वही तो अर्थ सनातन है)
वह सोने की कनी जो इस अजलि-भर रेत मे थी जो
धो कर अलग करने मे
मुट्ठियो से फिसल कर नदी मे बह गयी—
(उसी अकाल, अकूल नदी मे जिसमे से फिर अजलि भरेगी
और फिर सोने की कनी फिसल कर बह जायगी)!

तुम सदा से
वह गान हो जिसकी टेक-भर
गाने से रह गयी।
मेरी वह फूस की मडिया जिस का छप्पर तो
हवा के झोको के लिए रह गया
पर दीवारें सब बेमौसम की वर्षा मे बह गयी
यही सब हमारा नाता-रिश्ता है—इसी मे मैं हूँ और तुम हो
और इतनी ही बात है जो बार-बार कही गयी
और हर बार कही जाने मे ही कही जाने से रह गयी!

तो यो, इस लिए
यही अकेले मे
बिना शब्दो के
मेरे इस हठी गीत को जागने दो, गूँजने दो

मौन मे लय हो जाने दो,
यही
जहा कोई देखता-सुनता नही
केवल मरु का रेत-लदा झोका
डँसता है और फिर एक किरकिरी
हँसी हँसता बढ जाता है—
यही
जहा रवि तपता है
और अपनी ही तपन से जनी धूल-कनी की
यवनिका मे झपता है—
यही
जहा सब कुछ दीखता है
पर सब रग सोख लिये गये हैं
इस लिए हर कोई सीखता है कि
सब कुछ अन्धा है।
जहाँ सब कुछ साय-साय गूँजता है
और निरे शोर मे सयत स्वर धोखे से
लडखडा कर झड जाता है।

यही, यही और अभी
इस सधे सन्धि-क्षण मे
इस नये जनमे, नये जागे,
अपूव, अद्वितीय-अभागे
मेरे पुण्यगीत को
अपने अत शून्य मे ही तन्मय हो जाने दो—
यो अपने को पाने दो!

वही, वैसे ही अपने को पा ले, नही तो
और मैंने कब, कहाँ तुम्हे पाया है ?
हाँ—बातो के बीच की चुप्पियो मे
हँसी मे उलझ कर अनसुनी हो गयी आहो मे,
भीडो मे भटकी हुई अनाथ आँखो मे—
तीर्थो की पगडडियो मे
बरसो पहले गुज़रे हुए यात्रियो की
दाल-बाटी की बची-बुझी राखो मे !

उस राख का पाथेय लेकर मैं चलता हूँ—
उस मौन की भाषा मे मैं गाता हूँ
उस अलक्षित, अपरिमेय निमिष मे
मैं तुम्हारे पास आता हूँ,
मैं जो होने मे ही अपने को छलता है—
यो अपने अनस्तित्व मे तुम्हें पाता हूँ ! ०००





अन्तिम आलोक

•

सन्ध्या की किरण-परी ने
उठ अरुण पख दो खोले
कम्पित-कर गिरि-शिखरो के
उर छिपे रहस्य टटोले।

देखी उस अरुण किरण ने
कुल पवत-माला श्यामल—
बस एक शृग पर हिम का
था कम्पित कचन झलमल।

प्राणो मे हाय पुरानी
क्यो कसक जग उठी सहसा ?
वेदना-व्योम से मानो—
खोया सा स्मृति-घन बरसा !

तेरी उस अन्त घडी मे
तेरी आँखो मे, जीवन !
ऐसा ही चमक उठा था
तेरा अन्तिम आँसू कन !

ooo

सूर्यास्त

•

अन्तिम रवि की अन्तिम रक्तिम किरण छू चुकी हिमगिरि-भाल,
अन्तिम रक्त रश्मि के नर्तन को दे चुके चीड-तरु ताल।
नीलिम शिला खड के पीछे दीप्त अरुण की अन्तिम ज्वाल—
जग को दे अन्तिम आश्वासन अस्ताचल की ओट हुए रवि!

खोल हृदय-पट तू दिखला दे अपना उल्लस प्राणोन्माद,
शब्द-शब्द की कम्पन-कम्पन मे भर दे अतुलित आह्लाद,
अक्षर-अक्षर हो समथ बिखराने को जीवन-अवसाद—
फिर भी वर्णित हुई न होगी इस की एक किरण भर छवि!

स्वय उसी भैरव सौन्दर्य-नदी मे बह जा!
नीरवता द्वारा अपनी असफलता कह जा!
निरुद्वेग, मीठे विषाद मे चुप ही रह जा
इस रहस्य अपरिम के आगे आदर से नतमस्तक, रे कवि!

ooo





साम्राज्ञी का नैवेद्य-दान

•

हे महाबुद्ध !
मैं मन्दिर मे आयी हूँ
रीते हाथ
फूल मैं ला न सकी ।

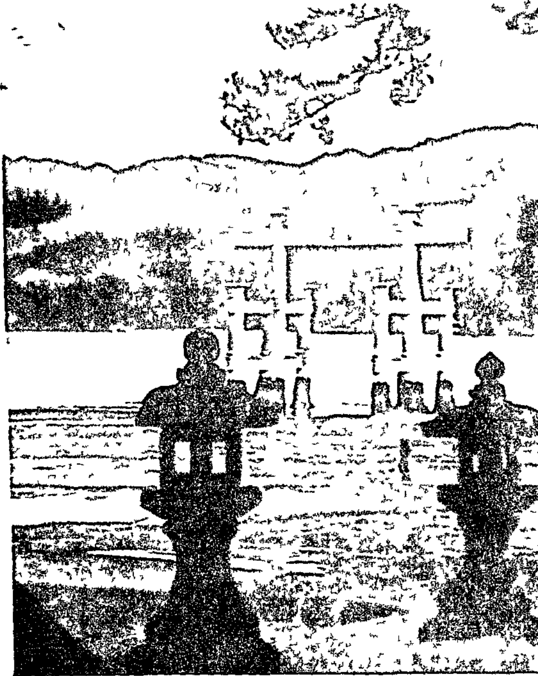
औरो का सग्रह
तेरे योग्य न होता ।

जो मुझे सुनाती
जीवन के विह्वल सुख-क्षण का गीत—
खोलती रूप-जगत् के द्वार, जहाँ
तेरी करुणा
बुनती रहती है
भव के सपनो, क्षण के आनन्दो के
रह सूत्र अविराम—
उस भोली मुग्धा को
कँपती
डाली से विलगा न सकी ।

जो कली खिलेगी जहाँ, खिली,
जो फूल जहाँ है,
जो भी सुख
जिस भी डाली पर
हुआ पल्लवित, पुलकित,
मैं उसे वही पर
अक्षत, अनाघ्रात, अस्पृष्ट, अनाविल,
हे महाबुद्ध !

अर्पित करती हूँ तुझे।
वही-वही प्रत्येक भरे प्याला जीवन का,
वही-वही नैवेद्य चढा
अपने सुन्दर आनन्द-निमिष का,
तेरा हो,
हे विगतागत के, वर्त्तमान के, पद्मकोश !
हे महाबुद्ध !   ०००

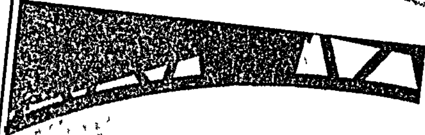




दीप पत्थर का

●

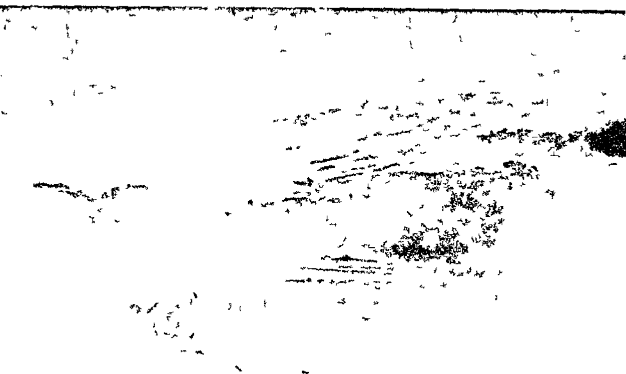
दीप पत्थर का
लजीली किरण की
पद-चाप नीरव
अरी ओ करुणा प्रभामय !
कब ? कब ?   ०००



सागर पर स

बहुत देर तक हम चुपचाप
देखा किये सागर को।
फिर कुछ धीरे से बोला
'हाँ, लिख लो मन मे इस जाती हुई धूप को,
चीडो मे सरसराती हुई इस हवा को,
लहरो की भोली खिलखिलाहट को
लिख-लो सब मन मे—क्योकि फिर
दिनो तक—(क्या बरसो तक ?)—
इसी सागर पर तुम लिखा करोगे

दद की एक रेखा—
बस एक रेखा
जी, हो सकता है, मूत्त स्मृति भी नही लायेगी—
केवल स्वय आयेगी
एक रेखा जिसे
न बदला जा सकता है न मिटाया जा सकता है
न स्वीकार द्वारा ही डुबा दिया जा सकता है
क्योंकि वह दद की रेखा है,
और दर्द
स्वीकार से भी मिटता नही है'
लौट हम आये साँझ घिरते-न-घिरते ।
पर फिर उस सागर-तट पर रात को
जगा तारा
उसी पर छितरायी चन्द्रमा ने चादनी
उसी पर नभोवृन्त होता रहा और नीला, अपलक



ये भी तो लहरो पर कुछ लिखते रहे ?
हमने जो लिखा था
अगर वह दद है
तो ये क्या लिखते है ?
न सही दर्द उन मे,
न सही भावना—
फिर भी, निर्वेद भी,
कुछ तो वे लिखते हैं ?
हा !
कि 'दर्द है तो ठीक है
(दद स्वीकार से भी मिटता नही है,
स्वीकार से पाप मिटते हैं,
पर दद पाप नही है।)
दर्द कुछ मैला नही,
कुछ असुन्दर, अनिष्ट नही,
दद की अपनी एक दीप्ति है—
ग्लानि वह नही देता।
तुमने यदि
दर्द ही लिखा है,
भद्दा कुछ नही लिखा, झूठा कुछ नही लिखा
तो आश्वस्त रहो
हम उसे गहरा ही करेंगे, सारमय बनायेंगे,
उस मे रग भरेंगे, रूप अवतरेंगे,
उसे माँज-माँज कर नयी एक आभा देते रहेंगे
काल भी उसे एक ओप ही देगा और।
जाओ, वह लिखा हुआ दर्द यहा छोड जाओ—
तुम्हे वह बार बार नाना शुभ रूपो मे फलेगा।' ०००

सागर पर भोर

•

बहुत बडा है यह सागर का सूना
बहुत बडा यह ऊपर छाया औंधा खोखल ।
असमजस के एक और दिन पर, ओ सूरज,
क्यो, क्यो, क्यो यह तुम उग आये ?

000

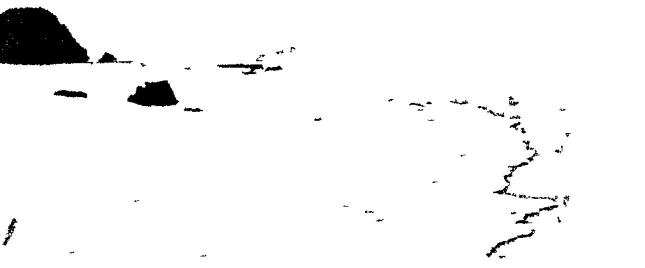
सागर-चित्र

•

सूने उदधि की लहर
धीर बधिर
सूने क्षितिज का आत्मलीन आलोक
अधूरा, धूसर, अन्धा

टकराहट चट्टानो पर
थोथे थप्पड की
जल के

उडे झाग की चिनियाहट
गालो पर,
आँखो मे किरकिरी रेत





अर्थहीन मँडराते कई क्रौंच
हकलाते-से जब-तब कराहते हलके।

यह क्षण यह चित्र
दरिद्र ?
अ मूल ? अमोल ?
विलीयमान ? चिर ?

ooo

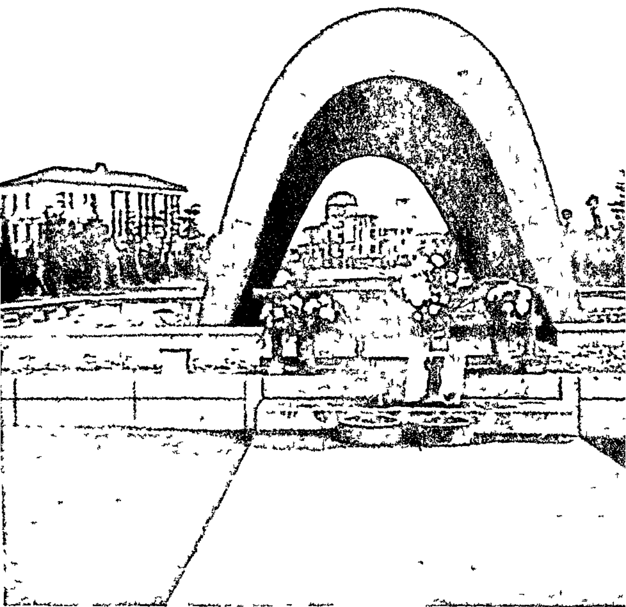
हिरोशिमा

•

एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे क्षितिज पर नही,
नगर के चौक
धूप बरसी
पर अन्तरिक्ष से नही
फटी मिट्टी से।

छायाएँ मानव-जन की
दिशाहीन
सब ओर पडी—वह सूरज
नही उगा था पूरब मे, वह
बरसा सहसा
बीचो-बीच नगर के
काल-सूय के रथ के
पहियो के ज्यो अरे टूट कर
बिखर गये हो
दसो दिशा मे।

कुछ क्षण का वह उदय अस्त।
केवल एक प्रज्वलित क्षण की
दृश्य सोख लेनेवाली दोपहरी
फिर ?
छायाएँ मानव-जन की
नही मिटी लम्बी हो हो कर
मानव ही सब भाप हो गय।



छायाएँ तो अभी लिखी हैं
झुलसे हुए पत्थरो पर
उजडी सडको की गच पर।

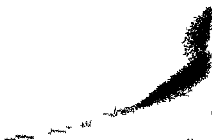
मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बना कर सोख गया।
पत्थर पर लिखी हुई यह
जली हुई छाया
मानव की साखी है। ०००



खुल गयी नाव

•

खुल गयी नाव
घिर आयी संझा, सूरज
डूबा सागर-तीरे ।
धुँधले पड़ते से जल पंछी
भर धीरज से
मूक लगे मँडलाने,
सूना तारा उगा
चमक कर
साथी लगा बुलाने ।



मैंने देखा, एक बूँद

•

मैंने देखा
एक बूँद सहसा
उछली सागर के झाग से
रँगी गयी क्षण भर
ढलते सूरज की आग से।

मुझको दीख गया
सूने विराट् के सम्मुख
हर आलोक-छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से!

ooo



धरा-व्योम

•

अंकुरित धरा से क्षमा
व्योम से झरी रुपहली करुणा।

सरि, सागर, सोते-निर्झर-सा
उमड़े जीवन
कहीं नहीं है मरना।

ooo







बर्फ की झील

•

चट-चट-चट कर सहसा तडक गये हिमखड
जमे सरसी के तल पर
लुढक-पुढक कर स्थिर
वसन्त का आना
—यद्यपि पहले नही किसी ने जाना—
होता रहा अलक्षित ।

नयी किरण ने छुए शृग हो गये सुनहले
बहते सारे हिमद्वीप । हाँ, गाओ,
'हेम-किरीटी राजकिशोरो का दल

नव-वसन्त के अभिनन्दन को मचल रहा है।'
गाओ, गाओ, गान नही झूठा हो सकता !

गाओ !
पर ये हेम-मुकुट हैं केवल
दूर सूर्य्य के लीला-स्मित से शोभन
कौतुक-पुतले।
नीचे की हिमशिला पिघल कर जिस दिन
स्वय मिलेगी सरसी-जल मे
नव-वसन्त को उस दिन
उस दिन उस दिन
मेरा शीश झुकेगा !
क्योंकि तपस्या
चमक नही है,
वह है गलना
गल कर मिट जाना—मिल जाना—
पाना।

ooo

ओ लहर

•

जिधर से आ रही है लहर
अपना रुख
उधर को मोड दो,
तट से बांधती हैं जो शिराएँ
मोह उन का छोड दो,
वक्ष सागर का नही है राजपथ
लीक पकडे चल सकोगे तुम उसे
धीमे पदो से रौंदते—
यह दुराशा छोड दो !

आह, यह उल्लास, यह आनन्द
वह जाने कि जिस से
अनगिनत बाहे बढा कर
ढीठ याचक सा लिपटता अग से
माँगता ही माँगता सागर रहा है
और जिसने
जोड कर कुछ नही रक्खा—
सदा बढ-बढ कर दिया है—
जो सदा उन्मुक्त हाथो, मुक्त मन
देता रहा है ,
अन्तहीन अकूल अथाह सागर का थपेडा
सदा जिसने समुद
छाती पर सहा है।

आह ! यह उल्लास, यह आनन्द, वह जाने,
बहा है

सनसनाता पवन जिस की लटों से छन कर,
थम गयी है तारिका
जिस के लिए
व्योम-पट पर जड़ी
हीरे की कनी-सी ज्वलित जय-संकेत-सी बन कर
हर लहर ने झोर कर जिस को
अनागत ज्योति का स्पंदित सँदेसा भर
कहा है।

जिधर से आ रही है लहर
अपना रुख
उधर को मोड़ दो
तरी
सागर की सुता है
संगिनी है पवन की,
उसे मिलने दो ललक कर
लहर से
वही उस को जय
मिलेगी तो मिलेगी
या मिलेगी लय,
असंशय
तुम तरी को छोड़ दो
बढ़ती लहर पर।

डर ?
कौन ? किस का ?
हरहराती आ, लहर, मेरी लहर,
फेन के अनगिन किरीटों को झुका कर
तू मुखर
आह्वान कर
मेरा, मुझे वर।
जिधर से आ रही है तू
जिधर से मुझ पर थपेड़े पड़ेंगे अविराम
उधर ही तो मुक्त पारावार है।
दुर्द्धर लहर
तू आ।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] !

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]





दूर्वाचिल

•

पार्श्व गिरि का नम्र, चीडो मे
डगर चढती उमगो सी
बिछी पैरो मे नदी ज्यो दर्द की रेखा !
विहग-शिशु मौन नीडो मे ।
मैंने आख भर देखा !
दिया मन को दिलासा—पुन आऊँगा ।
(भले ही बरस-दिन—अनगिन युगो के बाद !)
क्षितिज ने पलक-सी खोली,
तमक कर दामिनी बोली—
'अरे यायावर ! रहेगा याद ?'   ooo

वहाँ–रात

•

पत्थरो के उन कँगूरो पर
अजानी गन्ध-सी
अब छा गयी होगी
उपेक्षित रात ।

बिछलती डगर-सी सुनसान
सरिता पर
ठिठक कर सहम कर
थम गयी होगी बात ।

अनमनी-सी धुन्ध मे चुपचाप
हताशा मे ठगे-से
वेदना से क्लिन्न
पुरनम टमकते तारे
हार कर मुरझा गये होगे
अँधेरे मे बिचारे—
विरस रेतीली
नदी के दोनो किनारे ।

रुके होगे युगल चकवे
बाँध अन्तिम बार
जल पर
वृत्त मिट जाते दिवस के प्यार का—
अपनी हार का ।
गन्ध-लोभी व्यस्त भौंरा
कोष कर के बन्द
पडी होगी मौन
समेटे पख, खीचे डक,
मोम के निज मौन में निष्पन्द ।



पचमी की चाँदनी
कँपती उँगलियो से
आँख पथरायी समय की
आज जावेगी ।
लिखत को 'आज' की
फिर पोछ
'कल' के लिए
पाटी माँज जावेगी

कहा तो सहज, पीछे लौट देखेंगे नही—
पर नकारो के सहारे कब चला जीवन ?
स्मरण को पाथेय बनने दो
कभी तो अनुभूति उमडेगी
प्लवन का सान्द्र घन भी बन '
ooo

पहेली

•

गुरु ने छीन लिया हाथों से जाल,
शिष्य से बोले
'कहाँ चला ले जाल अभी ?
पहले मछलियाँ पकड तो ला ?'
तकता रह गया बिचारा
भौचक।

बीत गये युग। चले गये गुरु।
बूढा, धवल-केश, कुंचित-मुख
चेला
सोच रहा था अभी प्रश्न
'क्यों चला जाल ले ?
पहले, रे, मछलियां पकड तो ला ?'

सहसा भेद गयी तीखी आलोक किरण।
'अरे, कब से बेचारी मछली
घिर अगाध से
सागर खोज रही है!'

ooo



कलगी बाजरे की

हरी बिछली घास !
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की !

अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नही कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हायी कुई,
टटकी कली चम्पे की
वगैरह, तो
नही कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है ।

बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गये हैं ।
देवता इन प्रतीको के कर गये हैं कूच ।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है ।
मगर क्या तुम
नही पहचान पाओगी
तुम्हारे रूप के—
तुम हो, निकट हो, इसी जादू के—
निजी किस सहज, गहरे बोध से,
किस प्यार से मैं कह रहा हूँ—
अगर मैं यह कहूँ—
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा मे कलगी छरहरी बाजरे की ?

आज हम शहरातियो को
पालतू मालच पर सँवरी जुही के फूल से
सृष्टि के विस्तार का—ऐश्वर्य का—

औदार्य का—
कही सच्चा, कही प्यारा
एक प्रतीक
बिछली घास है,
या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली
बाजरे की !

और सचमुच, इन्हे जब-जब देखता हूँ
यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है—
और मैं एकान्त होता हूँ
समर्पित।
शब्द जादू हैं—
मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं है ? ०००

चाँदनी जी लो

•

शरद चाँदनी
बरसी
अँजुरी भर कर पी लो
ऊँघ रहे हैं तारे
सिहरी सरसी
ओ प्रिय कुमुद ताकते
अनझिप
क्षण मे
तुम भी जी लो।

सीच रही है ओस
हमारे गाने
घने कुहासे मे
झिपते
चेहरे पहचान
खम्भो पर बत्तियाँ
खडी है सीठी
ठिठक गये हैं मानो
पल-छिन
आने-जाने।

उठी ललक
हिय उमँगा
अनकहनी
अलसानी
जगी लालसा
मीठी,

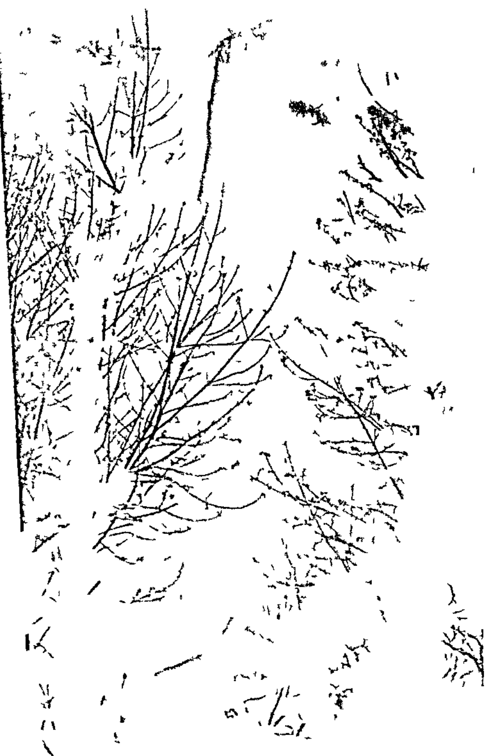
खडे रहो ढिग
गहो हाथ
पाहुन मन-माने,

ओ प्रिय रहो साथ,
भर-भर कर अँजुरी
पी लो

बरसी
शरद चाँदनी
मेरा

अन्त स्पन्दन
तुम भी क्षण क्षण जी लो !

ooo



चुपचाप

•

चुप-चाप चुप-चाप
झरने का स्वर
हम मे भर जाय,

चुप-चाप चुप-चाप
शरद की चाँदनी
झील की लहरो पर तिर आय,

चुप-चाप चुप-चाप
जीवन का रहस्य,
जो कहा न जाय, हमारी
ठहरी आखो मे गहराय,

चुप-चाप चुप-चाप
हम पुलकित विराट् मे डूबे—
पर विराट् हम मे मिल जाय—

चुप-चाप चुप-चाऽऽप

ooo

वह नाम

•

यही तो गा रहे हैं पेड
यही सरिता की लहर मे कांपता है
यही धारा के प्रपातित बिन्दुओ का हास है।

इसी से
मर्मरित होगी लताऍं
सिहर कर झर जायेंगी कलियां अदेखी
मेघ घन होंगे
बलाकाऍं उडेंगी
झाडियों मे चिहुंक कर पछी
उभारे लोम
सहसा बिखर कर उड जायेंगे
ओस चमकेगी विकीरित रग का उल्लास ले
पहली किरण में ।

फली घु घ मे बाँधे हुए है अखिल ससृति
नियम मे शिव के
यही तो नाम
यही तो नाम—
जिसे उच्चारते ये ओठ आतुर
झिझक जाते हैं।

पास आओ
जागरित दो मानसो के सस्फुरण मे
नाम वह सगीत बन कर मुखर होता है।

कहाँ हैं दोनो तुम्हारे हाथ
सम्पुटित कर के मुझे दो
कोकनद का कोष वह
गुजरित होगा
नाम से—
उस नाम से ०००



भीतर जागा दाता

मतियाया
सागर लहराया ।
तरग की पखयुक्त वीणा पर
पवन ने भर उमग से गाया ।

फेन-झालर-दार मखमली चादर पर मचलती
किरण-अप्सराएँ भारहीन पैरो से थिरकी—
जल पर आलते की छाप छोड पल-पल बदलती ।
दूर धुँधला किनारा ।
झूम-झूम आया, डगमगाया किया ।
मेरे भीतर जागा
दाता
बोला
लो, यह सागर मैंने तुम्हे दिया ।

हरियाली बिछ गयी तराई पर,
घाटी की पगडण्डी
लजायी और ओट हुई—



पर चचला रह न सकी, फिर उझकी और झाँक गयी ।
छरहरे पेड की नयी रगीली फुनगी
आकाश के भाल पर जय-तिलक आँक गयी ।
गेहूँ की हरी बालियो मे से
कभी राई की उजली, कभी सरसो की पीली फूल-ज्योत्स्ना
दिप गयी,
कभी लाली पोस्ते की सहसा चौंका गयी—
कभी लघु नीलिमा तीसी की चमकी और छिप गयी ।
मेरे भीतर फिर जागा
दाता
और मैंने फिर नीरव सकल्प किया
लो, यह हरी-भरी धरती—यह सवत्सा कामधेनु—मैंने
तुम्हे दी
आकाश भी तुम्हे दिया
यह बौर, यह अकुर, ये रग, ये फूल, ये कोपलें,
ये दूधिया कनी से भरी बालियाँ,
ये मैंने तुम्हे दीं

आँकी-बाँकी रेखा यह
मेडो पर छाग-छौने ये किलोलते,
यह तलैया, गलियारा यह,

सारसो के जोडे, मौन खडे पर तौलते—
यह रूप जो केवल मैंने देखा
यह अनुभव अद्वितीय, जो केवल मैंने जिया,
सब तुम्हें दिया।

एक स्मृति से मन पूत हो आया।
एक श्रद्धा से आहूत प्राणो ने गाया।
एक प्यार का ज्वार दुर्निवार बढ आया।
मैं डूबा नही, उमडा-उतराया,
फिर भीतर
दाता खिल आया।
हँसा, हँस कर तुम्हें बुलाया।

लो, यह स्मृति, श्रद्धा, यह हँसी,
यह आहूत, स्पर्श-पूत भाव
यह मैं, यह तुम, यह खिलना,
यह ज्वार, यह प्लवन,
यह प्यार, यह अडब उमडना—
सब तुम्हें दिया।
सब
तुम्हे
दिया।

ooo



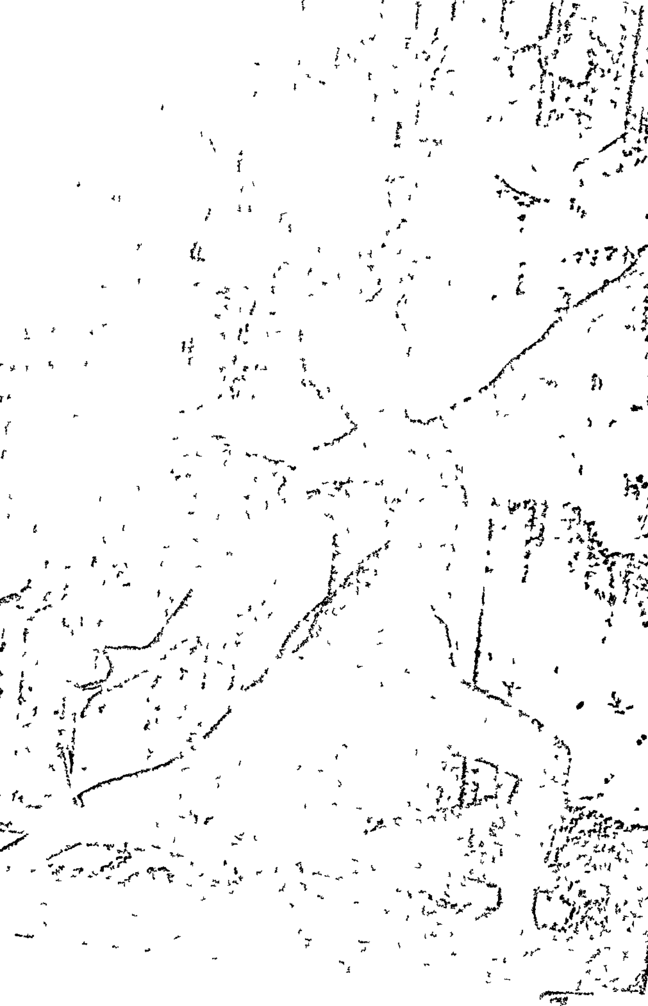
भादो की उमस

•

सहम कर थम-से गये हैं बोल बुलबुल के,
मुग्ध, अनझिप रह गये हैं नेत्र पाटल के,
उमस मे बेकल, अचल हैं पात चलदल के,
नियति मानो बँध गयी है व्यास मे पल के।

लास्य कर कौंधी तडित् उर पार बादल के,
वेदना के दो उपेक्षित वीर कण ढलके
प्रश्न जागा निम्नतर स्तर वेध हृत्तल के--
छा गये कैसे अजाने, सहपथिक कल के ?

ooo



नृत्य-स्मृति

•

याद है मुझे वह
खडहर रगशाला की मुडेर पर, खुले मे,
नृत्य बिना वाद्य का
चांदनी के तार ही जब गुजरित हो उठे थे,
किलकी थी मरुतो की बांसुरी।
किंकिणी से बुध-शुक्र,
गमक उठा था द्रुत ताल पर
हिया ये मृदग-सा।

याद है तो
गूंज रहा होगा वह अभी वहां
साथ मिल पत्थरो मे छने हुए झरने के शोर के,
झिल्ली की सारगी,
मजीर खनकाती वन-पत्तियां।

नीरव मृदग।
यति अन्तहीन।
स्मरण के मच पर थिरकी थी तुम,
कलहंसिनी, जो—
कहां गयी ?

ooo

ऋतुराज

शिशिर ने पहन लिया वसन्त का दुकूल,
गन्ध वह उड रहा पराग-धूल झूल,
काँटो का किरीट धारे बने देवदूत
पीत-वसन दमक उठे तिरस्कृत बबूल।
अरे, ऋतुराज आ गया।

पूछते हैं मेघ, 'क्या वसन्त आ गया ?'
हँस रहा समीर, 'वह छली भुला गया।'
किन्तु मस्त कोपलें सलज्ज सोचती—
'हमे कौन स्नेह-स्पर्श कर जगा गया ?
वही ऋतुराज आ गया !

प्रस्फुटन अभी नही लगी हुई है आस—
मुक्त हो चले अशक्त शीत-बद्ध दास।
मुक्त-प्राण, सवत्राण चैत्र आ रहा—
अक भेटने को तिलमिला उठे पलास !
क्योकि ऋतुराज आ गया !

सिद्धि नही, दौडते हैं किन्तु सिद्धिदूत—
वायु चल रही है आज स्निग्ध मन्त्रपूत।
स्तब्ध प्रतीक्षमान दिग्वधूटियाँ—
जीवन-प्रवाह बह रहा है अनाहूत।
क्योकि ऋतुराज आ गया !

अभी सुन पडी नही परभृता की कूक,
अभी कही कँपी नही है चातकी की हूक,
किन्तु क्यो सिहर उठी है रोम-रोम मे—
प्यार की, अथक नये दुलार की भी भूख ?
क्योकि ऋतुराज आ गया !

आज ऋतुराज आ गया—
अरे ऋतुराज आ गया। ०००

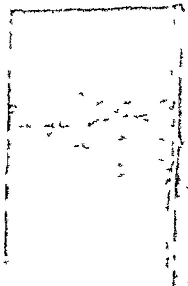


हवाई यात्रा ऊँची उड़ान

•

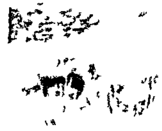
यह ऊपर आकाश नहीं, है
रूपहीन आलोक मात्र । हम अचल-पख
तिरते जाते हैं
भार-मुक्त ।
नीचे यह ताजी धुनी हुई रुई की उजली
बादल-सेज बिछी है
स्वप्न-मसृण
या यहाँ हमी अपना सपना हैं ?

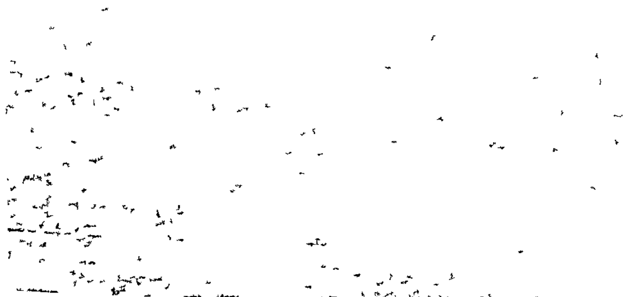
लेकिन उतरो
इस झीनी चादर मे है जो घुटन, भेद कर आओ !
दीखी क्या वे दूर लकीरें
धुँधली छायाएँ—कुछ काली, कुछ चमकीली,
मुग्धकरी कुछ, कुछ लहरीली ?
होती मूर्त्त महानगरी है
ससृति के अवतस मनुज की कृति वह
अविश्राम उद्यम की कीर्तिपताका !



उतरो थोडा और
घनी कुछ हो आने दो
रासायनिक धुन्ध के इस चीकट कम्बल की नयी घुटन को
मानव का समूह-जीवन इस झिल्ली मे ही पनप रहा है !

उतरो
थोडा और
धरा पर ।




हा, वह देखा ?
लगते ही आघात ठोस धरती का
धमनी मे भारी हो आया मानव-रक्त और कानो मे
गूँजा सन्नाटा ससृति का !

उतरो थोडा और
साँस ले गहरी
अपने उडनखटोले की खिडकी को खोलो
और पैर रक्खो मिट्टी पर
खडा मिलेगा
वहाँ सामने तुमको
अनपेक्षित प्रतिरूप तुम्हारा
नर, जिसकी अनझिप आँखो मे नारायण की व्यथा भरी है !

ooo

नाम तेरा

•

पूछ लूँ मैं नाम तेरा
मिलन रजनी हो चुकी, विच्छेद का अब है सवेरा।

जा रहा हूँ—और कितनी देर अब विश्राम होगा—
तू सदय है, किन्तु तुझको और भी तो काम होगा।
प्यार का साथी बना था, विघ्न बनने तक रुकूँ क्यो ?
समझ ले, स्वीकार कर ले यह कृतज्ञ प्रणाम मेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

और होगा मूख जिसने चिर-मिलन की आस पाली—
'पा चुका—अपना चुका'—है कौन ऐसा भाग्यशाली ?
इस तडित को बाध लेना दैव से मैंने न माँगा—
मूर्ख उतना हूँ नही, इतना नही है भाग्य मेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

श्वास की हैं दो क्रियाएँ—खीचना, फिर छोड देना,
कब भला सम्भव हमे इस अनुक्रम को तोड देना ?
श्वास की उस सन्धि सा है इस जगत् मे प्यार का पल
रुक सकेगा कौन कब तक बीच पथ मे डाल डेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा—

घूमते है गगन मे जो दीखते स्वच्छन्द तारे
एक आंचल मे पडे भी अलग रहते हैं बिचारे—
भूल मे पल-भर भले छू जायें उनकी मेखलाए—
दास मैं भी हूँ नियति का क्या भला विश्वास मेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

प्रेम को चिर ऐक्य कोई मूढ होगा तो कहेगा—
विरह की पीडा न हो तो प्रेम क्या जीता रहेगा ?



जो सदा बाधे रहे वह एक कारावास होगा—
घर वही है जो थके को रैन भर का हो बसेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

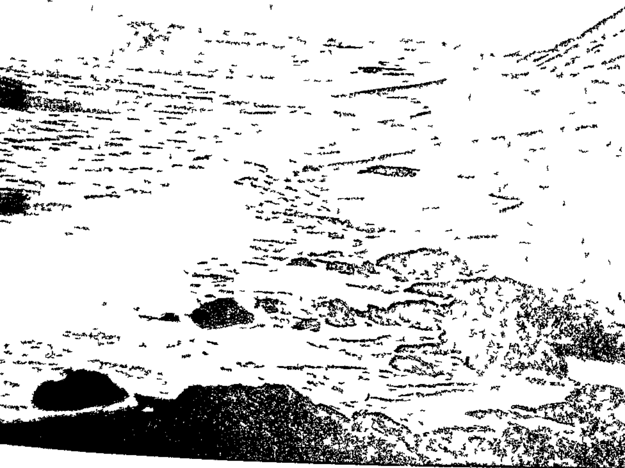
प्रकृत है अनुभूति, वह रस-दायिनी निष्पाप भी है,
माग उसका रोकना ही पाप भी है, शाप भी है,
मिलन हो, मुख चूम लें, आयी विदा, लें राह अपनी—
मैं न पूछूँ, तुम न जानो क्या रहा अजाम मेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

रात बीती, यदपि उसमे सग भी था, रग भी था,
अलस अगो मे हमारे स्फूर्त एक अनग भी था,
तीन की उस एकता मे प्रलय ने ताडव किया था—
सृष्टि-भर को एक क्षण-भर बाहुओ ने बाध घेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

सोच मत, 'यह प्रश्न क्यो जब अलग ही हैं मार्ग अपने ?'
सच नही होते, इसी से भूलता है कौन सपने ?
मोह हम को है नही पर द्वार आशा का खुला है—
क्या पता फिर सामना हो जाय तेरा और मेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

कौन हम-तुम ? दु ख-सुख होते रहे, होते रहेगे,
जान कर परिचय परस्पर हम किसे जा कर कहेगे ?
पूछता हूँ क्योकि आगे जानता हूँ क्या बदा है—
प्रेम जग का, और केवल नाम तेरा, नाम तेरा !

पूछ लूँ मैं नाम तेरा—
मिलन रजनी हो चुकी, विच्छेद का अब है सबेरा ! ०००



वर्षान्त

जिस दिन आया था वसन्त, उपवन मे जागी हँसी अतर्कित,
हम सोच रहे थे
ऋतुओ के अनुक्रम मे पहली मधु है, शीत, शरद् या वर्षा।

जिस दिन फूटा तारा—नभ की छाती मानो हुई कटकित—
हमे यही चिन्ता थी
तारो की किरणें किस कारण से कँपती हैं ?

जिस दिन जागा भाव, उलझते बैठे थे हम
जाँच रहे थे भावन, चिन्तन, कर्म-प्रेरणा के सम्बन्ध परस्पर।

आज—
आज, हाँ—
इस बालू के तट पर—(किस का तट, जो अन्तहीन फैला ही फैला
दीठ जहाँ तक भी जाती है !)
बैठे हम अवसन्न-भाव से पूछ रहे हैं
कहा गया वह ज्वार, हमारा जीवन, वह हिल्लोलित सागर कैसे, कहाँ गया ?

लो मुट्ठी भर रेत उठाओ
ठीक कह रहा हूँ मैं, हँसी नही है,
उसे उँगलियो मे से बह जाने दो बस।
यो।
इस यो में ही है सब जिज्ञासाओ के उत्तर।
फिर भी
जिज्ञासा का उत्तर अन्त नही है
जीवन का कौतूहल है अदम्य जीवन की आशा नही छोड सकती अन्वेषण,

यह जो
इतना लम्बा है कछार
बालू का
पार
कही इस का होना ही होगा
सागर की ही यह जूठन है
पहुँच सकें हम, बस, इतना है।
साथ चले चलते रह सकते हो क्या ?
बोलो, साथी, है क्या साहस ?

ooo



चुक गया दिन

•

'चुक गया दिन'—एक लम्बी साँस
उठी, बनने मूक आशीर्वाद—
सामने था आर्द्र तारा नील,
उमड आयी असह् तेरी याद !
हाय यह प्रति दिन पराजय दिन छिपे के बाद !

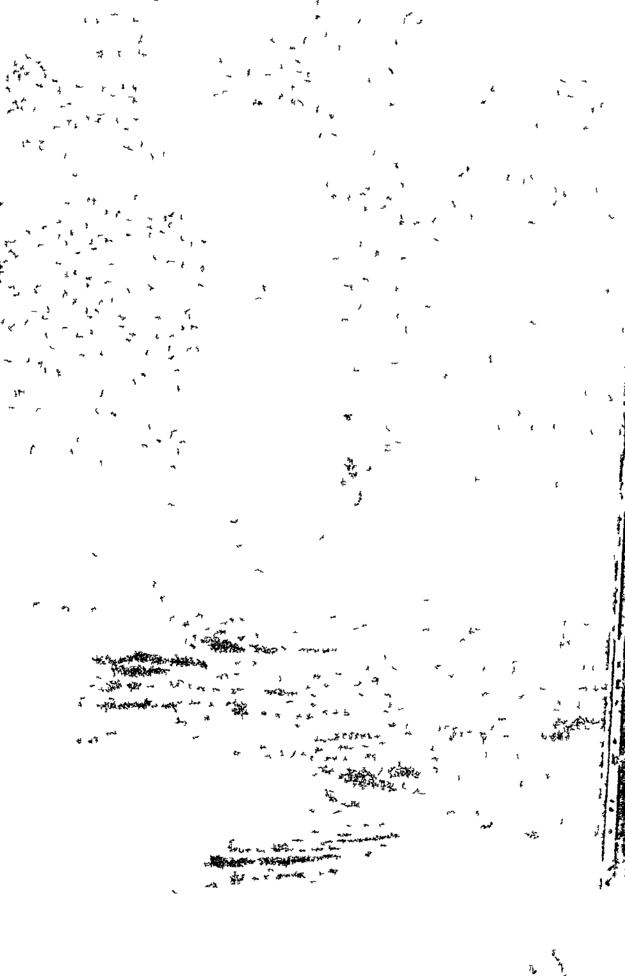
ooo

बना दे चितेरे

•

बना दे, चितेरे,
मेरे लिए एक चित्र बना दे।

पहले सागर आँक
विस्तीर्ण, प्रगाढ नीला,
ऊपर हलचल से भरा,
पवन के थपेडो से आहत,
शत-शत तरगो से उद्वेलित,
फेनोर्मियो से टूटा हुआ, किन्तु प्रत्येक टूटने मे
अपार शोभा लिये हुए,
चचल, उत्सृष्ट,
—जैसे जीवन।
हाँ, पहले सागर आँक
नीचे अगाध, अथाह,
असख्य दबावो, तनावो, खीचो और मरोडो को
अपनी द्रव एक रूपता में समेटे हुए,
असख्य गतियो और प्रवाहो को
अपने अखड स्थैय मे समाहित किये हुए,
स्वायत्त,
अचचल,
—जैसे जीवन
सागर आक कर फिर आक एक उछली हुई मछली
ऊपर अधर मे
जहाँ ऊपर भी अगाध नीलिमा है
तरगोर्मियाँ हैं, हलचल और टूटन है,
द्रव है, दबाव है,
और उसे घेरे हुए वह अविकल सूक्ष्मता है
जिस मे सब आन्दोलन स्थिर और समाहित होते हैं,



ऊपर अधर मे
हवा का एक बुलबुला-भर पीने को
उछली हुई मछली
जिस की मरोडी हुई देह-वल्ली मे
उस की जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है।
जैसे तडिल्लता मे दो बादलो के बीच के खिंचाव सब कौंध जाते हैं—
वज्र अनजाने, अप्रसूत, असन्धीत सब
गल जाते हैं।

उस प्राणो का एक बुलबुला भर पी लेने को—
उस अनन्त नीलिमा पर छाये रहते ही
जिस मे वह जनमी है, जियी है, पली है, जियेगी,
उस दूसरी अनन्त प्रगाढ नीलिमा की ओर
विद्युल्लता की कौंध की तरह
अपनी इयत्ता की सारी आकुल तडप के साथ उछली हुई
एक अकेली मछली।

बना दे, चितेरे,
यह चित्र मेरे लिए आँक दे।
मिट्टी की बनी, पानी से सिंची, प्राणाकाश की प्यासी
उस अन्तहीन उदीषा को
तू अन्तहीन काल के लिए फलक पर टाँक दे—
क्योंकि यह माग मेरी, मेरी, मेरी है कि प्राणो के
एक जिस बुलबुले की ओर मैं हुआ हूँ उदग्र, वह
अन्तहीन काल तक मुझे खीचता रहे
मैं उदग्र ही बना रहूँ कि
—जाने कब—
वह मुझे सोख ले। ०००

परायी राहें

•

दूर सागर पार
पराये देश की अनजानी राहें।
पर शीलवान् तरुओं की
गुरु, उदार,

पहचानी हुई छाँहें।
छनी हुई धूप की सुनहली कनी को बीन,
तिनके की लघु अनी मनके-सी बींध, गूँथ, फेरती सुमिरनी,
पूछ बैठी
कहाँ, पर कहाँ वे ममतामयी बाँहें ?

ooo



मेरे विचार हैं दीप

●

मेरे विचार हैं दीप
मेरा प्यार ? वह आकाश है।

वे नहीं देते उसे आलोक
वह भी स्नेह उनको नहीं देता।
अलग दोनों की इयत्ता है।
किन्तु उन की ओट ही
गहराइयाँ उसकी झलकती हैं
और उस के सामने ही सत्य उन का रूप
दिखता है विशद
सहसा अनिर्वचनीय !

मेरा प्यार ? वह आकाश है।

ooo



फिर एक बार

•

आज फिर एक बार
मैं प्यार को जगाता हूँ
खोल सब मुँदे द्वार
इस अगरु-धूम गन्ध रुँधे सोने के घर के
हर कोने को
सुनहली खुली धूप मे नहलाता हूँ।
तुम जो मेरी हो, मुझ मे हो
सघनतम निविड मे
मैं ही जो हो अनन्य
तुम्हे मैं दूर बाहर से, प्रान्तर से,
देशावर से, कालेतर से
तल से, अतल से, धरा से, सागर से,
अन्तरिक्ष से
निर्व्यास तेजस् के निगम्भीर शून्य आकर से
मैं, समाहित, अन्त पूत,
मन्त्राहत कर तुम्हे
ओ निस्सग ममेतर
ओ अभिन्न प्यार,
ओ धनी
आज फिर एक बार
तुम को बुलाता हूँ—
और जो मैं हूँ, जो जाना-पहचाना,
जिया-अपनाया है, मेरा है,
धन है, सचय है, उस की एक-एक कनी को
न्यौछावर लुटाता हूँ।

जिन शिखरो की
हेममज्जित उँगलियो ने
निर्विकल्प इगित से
जिस निर्व्यास उजाले को
सतत झलकाया है—
उस मे जो छाया मैंने पहचानी है
तुम्हारी है।

जिन झीलो की
जिन पारदर्शी लहरो ने
नीचे छिपे शैवाल को सुनहला चमकाय
निश्चल निस्तल गहराइयो मे
जो निश्छल उल्लास झलकाया है,
उस मे निर्वाक् मैंने
तुम्हे पाया है।

भटकी हवाएँ जो गाती हैं
रात की सिहरती पत्तियो से
अनमनी झरती वारि बूँदें
जिसे टेरती हैं,
फूलो की पीली पियालियाँ
जिस की ही मुसकान छलकाती हैं,
ओट मिट्टी की, असख्य रसातुरा शिराएँ
जिस मात्र को हेरती हैं,

वसन्त जो लाता है
निदाघ तपाता है
वर्षा जिसे धोती है, शरद सजोता है,
अगहन पकाता और फागुन लहराता
और चैत काट, बाँध, रौंद,
भर कर ले जाता है—



नैसर्गिक चंक्रमण सारा—
पर दूर क्यों
मैं ही जो साँस लेता हूँ
जो हवा पीता हूँ
उस मे हर बार, हर बार
अविराम, अक्लान्त, अनाप्यायित
तुम्हे जीता हूँ ।

घाटियो मे
हँसियाँ
गूँजती हैं ।
झरनो मे
अजस्रता
प्रतिश्रुत होती है ।
पँछी ऊँऽऽ ची
भरते हैं उडान—
आशाओ का इन्द्र-चाप
दोनो छोर नभ के
मिलाता है ।
मुझ मे पर—मुझ मे—मुझ मे—
मेरे हर गीत मे, मेरी हर ज्ञप्ति मे
कुछ है जो काटे कसकाता,
अँगारे सुलगाता है—
मेरे हर स्पन्दन मे, सास मे, समाई मे
विरह की आप्त व्यथा
रोती है !

जीना—सुलगना है
जागना—उमगना है
चीन्हना—चेतना का
तुम्हारे रग रँगना है ।

मैंने तुम्हे देखा है
असख्य बार
मेरी इन आँखो मे बसी हुई है
छाप उस अनवद्य रूप की ।

मेरे नासा-पुटो मे तुम्हारी गन्ध—
मैं स्वय उस से सुवासित हूँ ।
मेरे स्तब्ध मानस मे गीत की लहर-सा
छाया है तुम्हारा स्वर ।
और रसास्वाद मेरी स्मृति अभिभूत है ।

मैंने तुम्हे छुआ है
मेरी मुट्ठियो मे भरी हुई तुम
मेरी उँगलियो बीच छन कर बही हो—
कण प्रतिकण आप्त, स्पृष्ट, मुक्त ।

मैंने तुम्हे चूमा है
और हर चुम्बन की तप्त, लाल, अयस्कठोर छाप
मेरा हर रक्त कण धारे है ।

आह ! पर मैंने तुम्हे जाना नही !

नही ! मैंने तुम्हे केवल मात्र जाना है ।
देखा नही मैंने कभी
सुना नही, छुआ नही,
किया नही रसास्वाद—



ओ स्वत प्रमाण ! मैंने
तुम्हे जाना,
केवल मात्र जाना है।

देख मैं सका नही
दीठ रही ओछी,
क्योकि तुम समग्र एक विश्व हो।
छू सका नही
अधूरा रहा स्पर्श क्योकि तुम तरल हो,
वायवी हो।
पहचान सका नही तुम
मायाविनि, कामरूपा हो।

किन्तु, हा, पकड सका—
पकड सका, भोग सका
क्योकि जीवनानुभूति
बिजली-सी त्वरग, अमोघ एक पजा है
बलिष्ठ,
एक जाल निर्वारणीय
अनुभूति से तो
कभी, कही, कुछ नही
बच के निकलता !

जीवनानुभूति, एक पजा कि जिस मे
तुम्हारे साथ मे भी तो पकड मे
आ गया हूँ !
एक जाल, जिस मे
तुम्हारे साथ मैं भी बँध गया हूँ।
जीवनानुभूति

एक चक्की। एक कोल्हू।
समय की अजस्र धार का घुमाया हुआ
पर्वती घराट् एक अविराम।
एक भट्ठी, एक आवा स्वत तप्त
अनुभूति !

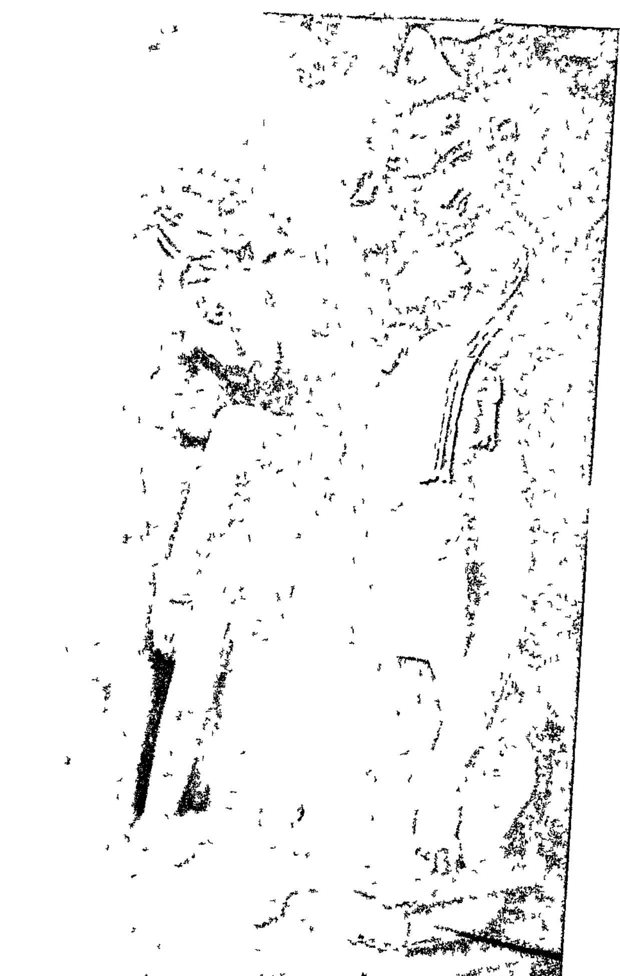
तुम्हे केवल मात्र जाना है,
केवल मात्र तुम्हें जाना है,
तुम्हे जाना है, अप्रमाद तुम्हे जपा है,
तुम्हें स्मरा है।

और मैंने देखा है—
और मेरी स्मृति ने
मेरी देखी सारी रूपराशि को इकाई दी है।

मैंने सुना है—
और मेरी अविकल्प स्मृति ने
सभी स्वर एक मूछना मे गूँथ डाले हैं।
—सूँघा, और स्मृति ने
विकीर्ण सब गन्धो को
वयित कर दिया एक वृन्त मे एक ही वसन्त के।

—मैंने छुआ है
और मेरे ज्ञान ने असख्य माया-मूर्तियो को
दी है वह सहति अचूक
जो-मात्र मेरी पहचानी है
जिसे मात्र मैंने चाहा है !

—मैंने चूमा है,
और, ओ आस्वाद्य मेरी।



ले गयी है प्रत्यभिज्ञा मुझे उस उत्स तक
जिस की पीयूपवर्षी, अनवद्य,
अद्वितीय धार
मुझे आप्यायित करती है।
हाँ, मैंने तुम्हे जाना है, मैं जानता हूँ,
पहचानता हूँ, साँगोपाग ,
और भूलता नही हूँ—
कभी भूल नही सकता।

भूलता नही हूँ
कभी भूल नही सकता
और मैं बिखरना नही चाहता।
आज, मन्त्राहूत आ प्रियस्व मेरी !
मुझ को जो कहना है,
वह इस धधकते क्षण मे—
वाग्देवता की यज्ञ-ज्वाला जब तक अभी
जलती है मेरी इस आविष्ट जिह्वा पर,
तब तक—मैं कह लूँ
मेरे ही दाह का हुताशन हो साक्षी मेरा !

ओ आहूत !
ओ प्रत्यक्ष !
अप्रतिम !
ओ स्वय-प्रतिष्ठ।
सुनो सकल्प मेरा

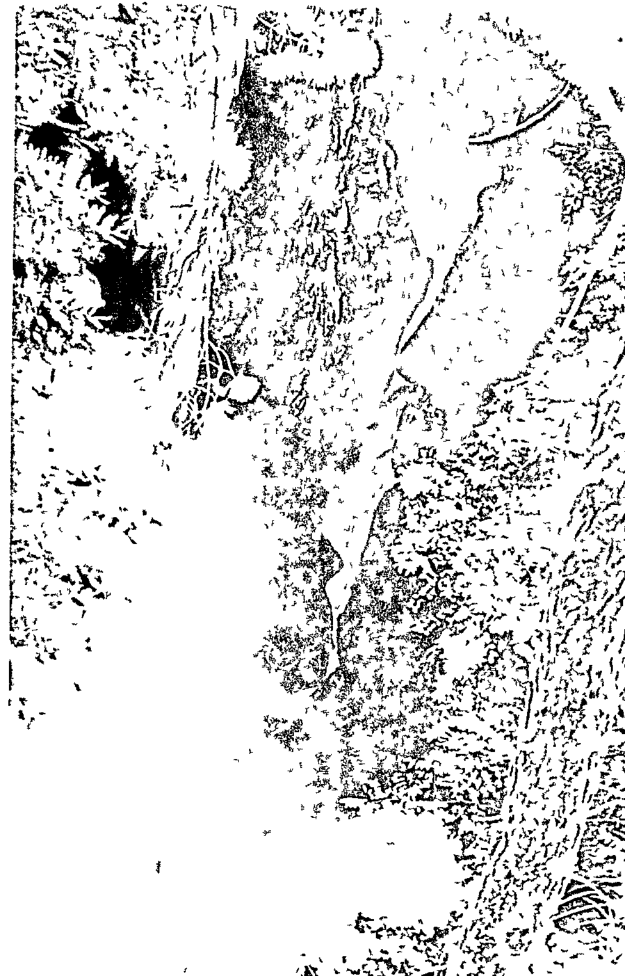
मैंने छुआ है, और मैं छुआ गया हूँ ,
मैंने चूमा है, और मैं चूमा गया हूँ ,
मैं विजेता हूँ, और मुझे जीत लिया गया है

मैं हूँ, और मैं दे दिया गया हूँ,
मैं जिया हूँ,
और मेरे भीतर से जी लिया गया है,
मैं मिटा हूँ, मैं पराभूत हूँ, मैं तिरोहित हू,
मैं अवतरित हुआ हू, मैं आत्मसात् हूँ,
अमर्त्य, कालजित् हूँ !

मैं चला हूँ
पहचान कर,
प्रकाश मे,
दिव्यप्रबुद्ध,
लक्ष्य-सिद्ध !

इसी बल
जहा-जहाँ पहचान हुई, मने
वह ठाँव छोड दी,
ममता ने तरिणी को तीर-ओर मोडा—
वह डोर मैंने तोड दी।
हर लीक पोछी, हर डगर मिटा दी
हर दीप निवा मैंने
बढ अ धकार मे
अपनी धमनी
तेरे साथ जोड दी !

ओ मेरी सह तितीर्षु,
हमी तो सागर हैं
जिस के हम किनारे हैं क्योकि जिसे हमने
पार कर लिया है।



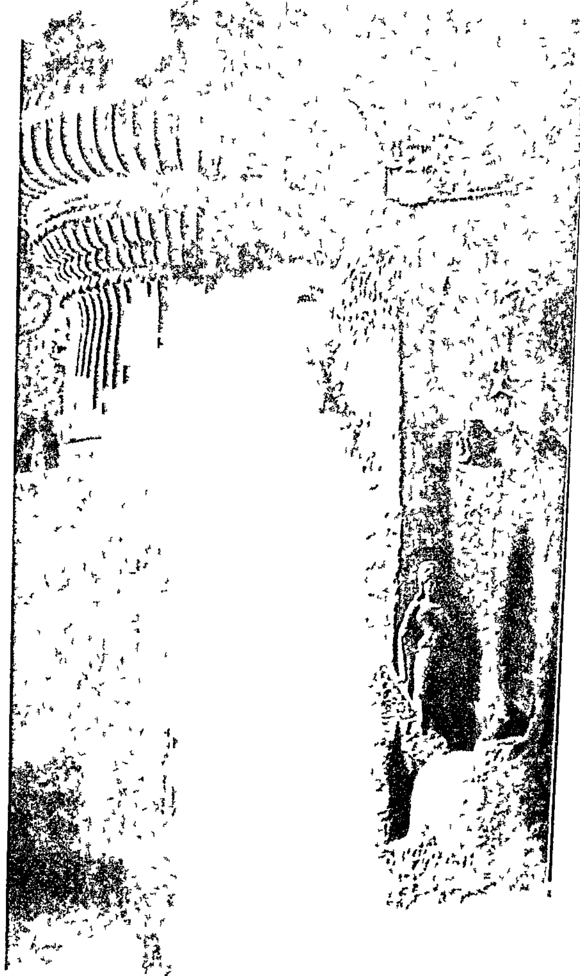
ओ मेरी सहपायिनि,
हमी वह निर्मल तल-दर्शी वापी हैं
जिसे हम ओक-भर पीते है—
बार-बार, तृषा से, तृप्ति से, आमोद से, कौतुक से
क्योंकि हमी छिपा वह उत्स हैं जो उसे
पूरित किये रहता है।

ओ मेरी सहधर्मा,
छू दे यह मेरा कर आहुति दे दूँ—
हमी याजक है, हमी यज्ञ,
जिस मे हुत हमी परस्परेष्टि।

ओ मेरी अतृप्त, दु शम्य धधक, मेरी होता,
ओ मेरी हविष्यान्न,
आ तू, मुझे खा
जैसे मैंने तुझे खाया है
प्रसादवत्।
हम परस्पराशी हैं क्योंकि परस्पर पोषी हैं,
परस्पर जीवी हैं।

ओ सहजन्मा, सह-सुभगा
नित्योढा,
सहभोक्ता,
सहजीवा कल्याणी।

ooo



निवेदन के दीप

•

घनी रात मे जाग कर देखा
साँझ के फीके तारे
सहसा दीप्त हो आये हैं—
जो आकाश
साझ को एक धुँधला कांच था
अब एक अन्तर्ज्योतित सागर हो गया है
जिसके नील स्फटिक जल मे
न चुकने वाले स्नेह से भरे दीप
तिरते हुए
जगमगा रहे हैं।

क्या वैसे ही नही
जैसे नितान्त अकेलेपन की
गहरी होती हुई रात मे निखर आता है
मेरा प्रणय और विश्वास ?
क्या वैसे ही नही जैसे मेरे अकेलेपन का लहराता सागर
अपने मे भर लेता है तुम्हारे स्पर्शों का आलोक
और उस पर कटकित हो आते हैं
निवेदन के न जाने कितने दीप

तुम
इस रात मे जागो या न जागो
इसे जानो या न जानो
यह सागर उमड रहा है तुम्हारी ओर
अब,
अब के बाद
फिर,
फिर,
निरन्तर
रात मे, सभी रातो मे,
दिन मे, सभी दिनो में,
सन्ध्या मे, सभी सन्ध्या मे,
काल की गति मे, मति में
अविराम
तुम जानो या न जानो !

ooo



मोर आशी

•

भोर !
तुम।
आशी !

जीवन है।
आशी !

000

